ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-1* Issue-11* December-2016
Innovation The Research Concept

# महाजनपद काल में दास प्रथा

**शैलेन्द्र कुमार मिश्र**
एसोसिएट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग,
एम0डी0पी0जी0 कालेज,
प्रतापगढ़

**सारांश**

वर्ण–व्यवस्था के समान ही दास–प्रथा भी भारतीय समाज में अति प्राचीन काल में ही प्रचलित हुई। हड़प्पा–युगीन समाज में भी दासों के अस्तित्व का अनुमान लगाया जाता है।[1] वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा स्मृतिग्रंथ सभी दास–दासियों का उल्लेख करते हैं। कौटिल्य के अनुसार यदि म्लेच्छ अपनी संतान का विक्रय करें अथवा उन्हें बंधक में दें तो वे दण्ड के भागी नही होते, पर आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता।[2] मनु भी कहते हैं कि दास बनाने के लिए शूद्रों का क्रय करना चाहिए।[3] बौद्ध पालि–साहित्य में तो दासों के जीवन से सम्बद्ध सामग्री की प्रचुरता है। प्राचीन भारत में दास–प्रथा थी तो अवश्य, परन्तु इस देष के समाज में दासों की वैसी दुरवस्था नहीं थी जैसी प्राचीन यूनान तथा रोम में अथवा अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में अमेरिका में थी। जहाँ इन पाश्चात्य देशों में दास–स्वामी अपने दासों के साथ क्रूरतम व्यवहार करते थे, वहाँ भारतवर्ष में किसी ब्रह्म पर्यवेक्षक को पारिवारिक भृत्यों तथा दासों में विभेद करना संभव न हो सका। यही कारण है कि मेगास्थनीज ने अपने भारत विवरण में दासों के अस्तित्व तक का उल्लेख नहीं किया हैं।

**मुख्य शब्द :** वर्ण–व्यवस्था, दास–प्रथा, वैदिक संहिताएँ, पालि–साहित्य।

**प्रस्तावना**

पालि पिटक तथा समकालीन संस्कृत–साहित्य से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में दासों के क्रय विक्रय तथा दान सामान्य बातें थीं। राजकुल धनाढ्य नागरिक परिवार तथा सामान्य ग्रामीण गृह में समान रूप से दास–दासी रखे जाते थे । हमें दास–दासी क्रय–विक्रय के अनेक उदाहरण मिलते हैं। नन्द–जातक (जातक सं0 39) में एक सद्धिविहारिक (बौद्धबिहार का अन्तेवासी) की तुलना शत–मुद्रा–कीत दास से की गयी है। सत्तुभस्त जातक (संख्या–402) के अनुसार जब एक ब्राह्मण ने भिक्षा माँग कर सात सौ कार्षापण उपार्जित कर लिया, तो उसने सोचा–'इतनी मुद्राओं से दास–दासियाँ खरीदी जा सकती हैं,' परन्तु इस प्रसंग में दास दासियों की संख्या का उल्लेख न होने से एक दास अथवा दासी के निश्चित मूल्य का पता नहीं चलता । अतः इस सम्बन्ध में किसी ठोस निर्णय पर पहुँचने में कठिनाई हो जाती है। जैसा कि नन्द जातक में उल्लेख मिलता है, सम्भवतः एक दास का मूल्य लग भग एक सौ कार्षापण रहा होगा, यद्यपि इसमें सकारण कमी–वेशी होती रहती होगी। हष्ट–पुष्ट दास का मूल्य दुर्बल शरीरवाले की अपेक्षा कुछ अधिक पड़ता होगा। इसी प्रकार एक सामान्य रूप–रंग वाली दासी की तुलना में रूपवती दासी का मूल्य भी अधिक चुकाया जाता होगा । विक्रयी और क्रेता की आवश्यकताओं अथवा परिस्थितियों का प्रभाव भी दास–दासी के मूल्य निर्धारण में पड़ना स्वाभाविक था।

दास–दासी क्रय के समान दास–दासी का दान भी समाज में अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा। वैदिक युग के राजे अपने पुरोहितों को यज्ञ एवं राज्याभिषेक समारोहों के समय बड़ी संख्या में दास–दासी प्रदान करते थे। महाभारत काल में महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय–यज्ञ में नियुक्त 88000 ब्राह्मण स्नातकों को 30–30 दासियों का दान दिया।[4] पालि–पिटक में भी दास–दासी दान के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इस प्रथा के प्रचलन के कारण ही भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं के लिए दान में दास अथवा दासी स्वीकार करने का निषेध किया। जुण्ह–जातक (456) के अनुसार एक राजा से एक ब्राह्मण को अन्य सामग्री के साथ एक सौ दासियों का दान प्राप्त हुआ।[5] क्षत्रप उषवदात के नासिक अभिलेख में क्षत्रप नरेष नहपान द्वारा ब्राह्मणों को दान में कन्या प्रदान करने का उल्लेख किया गया है। जो कन्याएँ दान में दी गई वे अवश्य ही दासियाँ रही होगी । राज–परिवारों में दास–दासी दान की प्रथा किसी न किसी रूप में आधुनिक युग तक चलती रही, पर अब इसका लोप हो चुका है।

दासता के कारण तथा दास–स्वामियों का व्यवहार– पालि–पिटक, कौटिलीय अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में अनेक प्रकार के दासों का वर्णन उपलब्ध है, जिनसे भारतीय समाज में इस प्रथा के उद्भव एवं विकास के कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। पालि–त्रिपिटक में आठ प्रकार के दासों का उल्लेख किया गया है[6] और उनकी संख्या अर्थशास्त्र में पाँच[7] तथा मनुस्मृति[8] में सात है। दासों के इस वर्गीकरण के आधार पर हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि युद्ध, धनाभाव, दुर्भिक्ष तथा ऋण–ग्रस्तता दासप्रथा के उद्भव के मूल कारण हुए। समाज में दासों के अस्तित्व का सर्वप्रथम कारण हुआ–युद्ध। जब युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे का पराभव होता था, विजयी दल के सैनिक पराजित पक्ष के सैनिकों तथा आकांत राज्य के नागरिकों को यथासाध्य बन्दीबनाकर ले जाते थे। वस्तुतः इन युद्धबन्दियों का जीवन विजयी राजा की दया पर निर्भर करता। इन्हें जो जीवनदान मिलता वह अपनी स्वतन्त्रता खोकर, क्योंकि ये विजयी राजा के दास बनकर ही जी पाते थे। इस श्रेणी के दासों को मनु ने ध्वजाहत की संज्ञा दी है। युद्धबन्दियों में कुछ तो बेच दिये जाने लगे और अन्य दान में दिये जाने लगे। इन दोनों प्रकार के दासों का वर्णन मिलता है। कई अवस्थाओं में तो दासत्व स्वेच्छया स्वीकार किया जाता था–जब किसी परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त विषम हो जाती तो गृहस्वामी अपनी पत्नी और सन्तान या स्वयं को बन्धक रखते थे । बहुत का यही हाल दुर्भिक्ष के दिनों में होता था जब बुभुक्षित लोगों को दास बनने के लिए बाध्य होना पड़ता। ऋण के बोझ से दबे व्यक्ति भी ऋणमुक्त होने के लिए दासत्व का सहारा लेते थे । इस स्थिति में वे या तो जिस व्यक्ति का उन पर ऋण होता, उसका दासत्व ऋणमुक्त होने की अवधि तक के लिए स्वीकार करते, अथवा स्वयं किसी परिवार में बन्धक रहकर महाजन का कर्ज चुकाते। एक वर्ग उन दासों का था जो जन्मदास कहे जाते थे और माता–पिता के दास होने से उन्हें भी दास होना पड़ता था । इससे प्रतीत होता है कि पराधीन माता–पिता की सन्तान को स्वतन्त्र नागरिकता का अधिकार नहीं था । कभी–कभी अपराध कर्मियों को उनके अपराधों के दण्डस्वरूप दास बना दिया जाता था ।

दास संज्ञा पराधीनता का द्योतक है और पराधीन व्यक्ति के भाग्य में सुख कहाँ ? दासों के अनुसार अपने अधीनस्थ दासों के प्रति व्यवहार करते होंगे। पालि–पिटक में वर्णन आता है कि कुछ दासपति तो अपने दासों की त्रुटियों के लिए उन्हें दण्डित करते थे और अन्य कुछ उनके प्रति दया–भाव दिखलाते थे । जिन दासपतियों का स्वभाव क्रूर था वे अपने दासों को पीड़ा पहुँचाते थे। कटाहक–जातक का एक दास भाग्यवश अपने स्वामी का भांडागारिक तो हो गया, पर उसे सदा इस बात का भय बना रहता था कि न जाने किस क्षण भाग्य उसका साथ छोड़ दे। वह अपने मन में सोचा करता– क्या ये मुझे सदा भांडागारिक बनाकर रखेंगे? किसी न किसी दिन इन्हें मुझमें कोई त्रुटि दिखलायी पड़ेगी तो मार पड़ेगी, मैं बन्दी बना दिया जाऊँगा, मेरे शरीर को दागा जायेगा और मुझे दासों का भोजन खाने के लिए दिया जाने लगेगा।[9] दूसरी कहानी है एक दासी की जिसे उसके स्वामी मजदूरी करने के लिए भेजते थे। एक दिन दुर्भाग्यवश वह कमाकर कुछ न ला सकी। फिर क्या था! उसे घर से बाहर फेंक दिया गया और उसके स्वामी तथा स्वामिनी दोनों ने उसे कोड़े लगाये।[10] मनु ने भी स्वामियों को यह अधिकार प्रदान किया है कि वे अपराध करने पर अपने दासों को रज्जु–प्रहार से दण्डित करें,[11] परन्तु समाज में ऐसे भी व्यक्ति थे जो अकारण दासों को पीड़ा पहुँचाते थे। अंगुत्तर निकाय में वर्णन मिलता है कि क्रूर दास–स्वामी के दास जब कार्यरत रहते, तो दण्ड के भय से उनके मुख अश्रुपूर्ण होते और कई तो रूदन भी करते रहते।[12] तक्क–जातक (63) में वाराणसी की एक श्रेष्ठी कन्या का वर्णन मिलता है जो अत्यन्त क्रूर थी और अकारण अपने दासों तथा कर्मकरों को मारती रहती । वेस्सन्तर जातक में एक क्रूर द्वारा दास–दासी को कष्ट देने का मार्मिक वर्णन किया गया है– 'एक ब्राह्मण को राजा वेस्सन्तर ने अपने पुत्र एवं पुत्री को दान में दे दिया। वह लोभी ब्राह्मण उन दोनों के हाथ लता से बाँधकर और उसका एक छोर स्वयं पकड़कर उन्हें खींचता हुआ ले चला। उसने एक हाथ में डंडा भी पकड़ रखा था। उसे लम्बा मार्ग तयकरना था, अतः जब रात्रि का आगमन हो जाता, तो वह उन दोनों बच्चों को पौधों से बांध देता और स्वयं वन–जन्तुओं के भय से किसी पेड़ पर चढ़ जाता।[13] इसप्रकार के वर्णन में कितनी सत्यता है यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बौद्ध लेखकों ने ब्राह्मणों को बदनाम करने के लिए शायद उनके सामान्य दोष को भी अतिरंजित कर दिया है।

जातक कथाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि समाज में क्रूर दासपतियों का सर्वथा अभाव तो नहीं था, परन्तु उनकी संख्या कम थी। दासों के विषय में उपलब्ध सामग्री से हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि सामान्यतया दासों का जीवन दुखमय नहीं था। धर्मप्रधान कुलों में दास तथा कर्मकर सुख–पूर्वक रहते थे– उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता था और उन्हें भोजन भी अच्छा मिलता था। किसी दास को तो अपने स्वामी के परिवार के सदस्य की ही भाँति कई सुविधाएँ उपलब्ध हो जाती थीं। कटाहक था तो दासपुत्र ही, परन्तु अपने स्वामिपुत्र के साथ रहकर उसने पढ़ना–लिखना सीखा और उसे दो तीन शिल्पों का भी ज्ञान हो गया। अन्त में उसे उस परिवार का भांडागारिक बना दिया गया।[14] जब एक राजपुरोहित को राजा ने वरदान दिया तो उसने घर जाकर अपनी पत्नी, पुत्र और दासी से पूछा–'राजा ने मुझे वर दिया है, मैं क्या माँगू? दासी ने कहा–मेरे लिए ऊखल, मूसल और सूप माँगना।[15] जब एक ब्राह्मण कुमार की मृत्यु हो गयी और उसे पार्थिव शरीर का अग्नि संस्कार किया जाने लगा तो उस परिवार की दासी के शुष्क नेत्रों को देखकर एक व्यक्ति ने कहा–'निःसन्देह तुम्हारे स्वामी के पुत्र ने तुम्हें अपवचन कहा होगा, मारा होगा, कष्ट दिया होगा, इसी कारण तुम प्रसन्न हो, तुम्हें रूलाई नहीं आ रही है।'उस दासी ने उत्तर दिया–'स्वामी, आप ऐसे वचन न बोलें, मेरे साथ इस प्रकार की बातें नही हुई हैं, मेरे स्वामी के पुत्र के हृदय में तो मेरे लिए क्षमा, प्रेम और दया की भावनाएँ थीं और व मेरे लिए उसी प्रकार थे जिस प्रकार कोई पुत्र माँ का स्तनपान कर

पलता है।[16] नन्द जातक में नन्द नामक दास का वर्णन अपने स्वामी के अनन्य विश्वासपात्र में रूप में किया गया है। इस प्रकार के वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश दास–स्वामी अपने दासों के प्रति मानवोचित व्यवहार करते थे । प्राचीन भारत के विधि निर्माताओं ने भी दासों के हितों की उपेक्षा नहीं की । कौटिल्य ने यह व्यवस्था दी है कि दासों के प्रति दुर्व्यवहार अपराध माना जायेगा– 'यदि कोई स्वामी अपने दास को मारता है, अथवा उससे निम्नस्तर का काम लेता है, तो उसे अपने दास के क्र–मूलय से वंचित कर दिया जायेगा। यदि कोई स्वामी दासी कन्या अथवा बन्धक में दी गयी लड़की के साथ बलात्कार करता है, तो उसे न केवल क्रय–मूल्य से ही वंचित होना पड़ेगा वरन् दण्डस्वरूप शुल्क भी देना होगा'।[17]

बौद्ध जातकों में गृहस्वामी के युवा–पुत्रों और उनकी युवती दासियों के प्रेम सम्बन्धों के वर्णन भी मिलते हैं। प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के प्रेम की इति किस तरह होती होगी ? इस विषय में कौटिल्य का यह मत है कि यदि किसी दासीपुत्री को अपने स्वामी से गर्भ रह जाय तो उस अवस्था में वह अपनी दासता से मुक्त मानी जायेगी।[18] इस विधान से प्रतीत होता है कि संभवतः दासीकन्या अपने स्वामी की पत्नी बन जाती होगी। जातक कथाओं से इस अनुमान का समर्थन होता है। तिस्सकुमार राजगृह के एक धनाढ्य श्रेष्ठि के एकमात्र पुत्र थे । जब वे प्रवर्जित होकर भिक्षुसंघ में प्रविष्ट हुए, तो उनके माता–पिता को घोर कष्ट हुआ। उस परिवार की एक दासीकन्या ने श्रेष्ठि–दंपति के कष्ट से द्रवित होकर तिस्सकुमार को सन्यासमार्ग से विरत करने का निष्चय किया। श्रेष्ठिपुत्र उस दासीकन्या के रूप लावाण्य पर विमोहित हो गया और उसने भिक्षु जीवन का परित्याग कर किया।[19] भिक्षु संघ का त्याग करने के पष्चात श्रेष्ठिपुत्र का अपनी दासीकन्या से क्या सम्बन्ध रह गया इस विषय में कहानीकार मौन है, पर श्रेष्ठिपुत्र को अपनी दासी कन्या में अनुरक्ति के कारण ही सन्यास से विरक्ति हुई, अतः उनके प्रेम की तर्कसंगत परिणति दाम्पत्य में दीखती है। उदालक जातक में भी एक राज पुरोहित के दासी प्रेम का वर्णन है। राज पुरोहित को अपनी प्रेमिका दासी कन्या से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उदालक रखा गया। जब वह वयस्क हुआ और बड़ा ज्ञानी तथा तपस्वी हो गया, तो उसकी भेंट अपने पिता से हुई। पिता ने अपने पुत्र का परिचय पाकर कहा– 'तम ब्राह्मण हो इसमें कुछ भी संदेह नहीं है।' इस वर्णन से यह संकेत मिलता है कि दासीपुत्रों को अपने पिता की जाति की सदस्यता मिल जाती होगी। कौशल नरेश का विवाह वासभखत्तिया से हुआ था जो शाक्यवंशी महानाम क्षत्रिय की एक दासीपुत्री थी।[20] यद्यपि यह सम्बन्ध कष्टपूर्वक संपन्न किया गया था, परन्तु वासभखत्तिया के पुत्र को कौशल का युवराजत्व प्राप्त हुआ। इस सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध ने भी कहा कि पितृ कुल को ही प्रधानता देनी चाहिए। (मातिगोतं किं करिस्सति पिति गोत्तमेव पमानम्)

जातकों ने उच्चवर्ण की कन्याओं के साथ कुछ दासों के प्रेम का भी वर्णन किया है। चुल्लक सेट्ठि–जातक (4) के अनुसार राजगृह के एक श्रेष्ठि की कन्या को अपने दास से प्रेम हो गया। इस भेद के खुल जाने के भय से श्रेष्ठिकन्या अपने प्रेमी के साथ भाग गयी। उस दास से उसे दो पुत्र हुए । जब प्रथम पुत्र कुछ बड़ा हुआ तो उसको अपने सम्बन्धियों के विषय में जिज्ञासा हुई। उसने अपनी माता से इस सम्बन्ध में पूछा तो उसने उत्तर दिया– 'पुत्र, तुम एक बड़े श्रेष्ठि के दौहित्र हो।' जब पुत्र ने अपने नाना के घर जाने का जिद की तो उसके माता–पिता राजगृह गये। परन्तु न तो पुत्री को पिता के सम्मुख जाने का साहस हुआ और न पिता को ही पुत्री को देखने की इच्छा हुई। अन्त में श्रेष्ठि ने अपने दौहित्रों को तो रख लिया, किन्तु पुत्री और जामाता को पर्याप्त धन देकर विदा कर दिया। वस्तुतः समाज के लिए यह असह्य था कि उच्च–वर्ण की कन्या निम्न वर्ग के किसी युवक से प्रेम या विवाह कर बैठे । इस प्रकार के किसी भी सम्बन्ध को प्रोत्साहन नहीं दिया गया, परन्तु यदि उच्च वर्ण की कन्या किसी दास अथवा निम्नजाति के युवक से प्रेम कर बैठती तो उस सम्बन्ध को अनिच्छापूर्वक स्वीकार करना पड़ता था । इस विषय में दासों की अपेक्षा दासियों की स्थिति अधिक अच्छी थी, क्योंकि यदि वे सुन्दरी होती तो उन पर उनके युवा स्वामियों के प्रेमासक्त होने की अत्यधिक संभावना रहती थी ।

दासों के काम–जिस प्रकार के कर्मो में दासों को नियुक्त किया जाता था उन कर्मो की प्रकृति के अनुरूप संज्ञाओं का उपयोग उन दासों के लिए बौद्ध लेखकों ने किया है, जैसे– जो दास खेत, कर्मषाला अथवा दुकान में काम करते थे उनको कम्मन्तदास कहा गया।[21] जो वस्त्र बनने और धोन का कर्म करते थे वे क्रमशः पेशकरदास और रजकदास कहलाये।[22] इसी प्रकार दासियों के लिए नारी दासी, देवदासी, कुम्भदासी, वन्नदासी, वीहिकोट्टिक दासी इत्यादि संज्ञाएँ मिलती है।[23] इस तरह प्रतीत होता है कि दासों से अनेक प्रकार के काम लिये जाते थे और उन दासों की संख्या न्यून थी जो कटाहक के समान भांडागारिक या कोषाध्यक्ष अथवा अपने स्वामी के निजी सचिव के पदों पर नियुक्त किये जाते थे। अधिकांश दास प्रायः गृहकार्यो में लगाये जाते थे जो प्रत्येक परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न प्रकार के होते थे । राजकुलों में अथवा धनाढ्य श्रेष्ठिकुलों में नियुक्त तथा सामान्य गृहपतियों के घर काम करने वाले दासों के कार्य समान नहीं हो सकते थे । दासों से प्रायः दो प्रकार के कर्म कराये जाते थे– एक तो गृहकार्य था और दूसरा, अपने स्वामी की सेवा। पालि–पिटकों में दास–दासियों को अनेक प्रकार के गृह–कार्यो में संलग्न वर्णित किया गया है, जैसे– रसोइये का काम (पाचक कर्म)[24] जलाशय से जल लाना[25] बर्तन धोना[26], अन्नागार की रखवाली करना और धूप में धान सुखाना[27] इत्यादि। कृषकों की दासियाँ अपने स्वामी के लिए खेत में भोजन पहुँचाती थीं।[28] किसी–किसी परिवार में दास–दासी को मजदूरी करने के लिए अन्यत्र भेजा जाता था। [29] स्वामी स्वामिनी सेवा सम्बन्धी कई कार्यो का भी उल्लेख मिलता है। धनी परिवारों की गृहस्वामिनियाँ जब स्नान के लिए जलाषय की ओर प्रस्तान करतीं, तो दासियाँ उनका साथ देतीं। जब वे जलाशय में प्रवेश करतीं, तो दासियाँ उनके वस्त्राभूषणों की रखवाली करतीं।[30] गृहस्वामी अथवा

गृहस्वामिनी के भोजन करते समय तत्सम्बन्धी सभी आवश्यक कार्य भी दास–दासियों द्वारा ही संपन्न किये जाते।[31] इस प्रकार के कर्म ऐसे नहीं थे जिन्हें हीन कहा जाय। कौटिल्य ने दास–दासियों से गर्हित कर्म कराने का निषेध किया है। उन्होंने दास–दासियों से मुर्दा ढोने, मलमूत्र साफ कराने, उच्छिष्ट भोजन की सफाई और नग्नस्नान के समय दासी से काम लेते आदि का निषेध किया है।[32] कौटिल्य की इस व्यवस्था से तत्कालीन सामाजिक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है।

**दास–मोक्ष**

जो युद्धबंदी दास बना दिये जाते थे उनका अपने पक्ष की विजय हो जाने पर स्वतन्त्रता प्राप्त करना स्वाभाविक था। परन्तु ऐसा तो विशेष परिस्थिति वंश ही संभव था। युद्ध तो नित्य होते नहीं। दासों के क्रय–विक्रयादि जब सामान्य रूप में समाज में प्रचलित हो गये उस स्थिति में उनके मोक्ष की बात विचित्र लगती है। पर यह भारतीय समाज की अपनी विशेषता रही है जिससे अंततः दासों का दासत्व समाप्त कर दिया जाता था। पालिपिटक से ज्ञात होता है कि दास द्वारा सन्यास स्वीकार कर लेने से, अथवा अपने स्वामी की इच्छा से, अथवा अपने स्वामी को मुक्ति शुल्क चुका देने से दासत्व का अन्त हो जाता। दीर्घ–निकाय में कहा गया है कि यदि कोई दास सन्यासी हो जाता है तो वह अभिवादन और उच्चासन तथा भिक्षु जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं, यथा–चीवर, पिण्ड–पात्र, आसन आदि का अधिकारी माना जायेगा।[33] सोणनन्द–जातक (532) में वर्णित है कि एक ब्राह्मण गृहपति ने प्रव्रज्या ग्रहण करने के समय अपने सभी दासों को मुक्त कर दिया। वेस्सन्तर–जातक की कहानी के अनुसार शुल्क देकर दासत्व का अन्त सम्भव था। राजा वेस्सन्तर ने जब अपनी सन्तान दान के रूप में एक ब्राह्मण को दे दी तो अपने पुत्र से कहा– 'पुत्र, जाओ तुम अपनी मुक्ति के लिए इस ब्राह्मण को शत स्वर्ण निष्क देना और यदि तुम अपनी भगिनी को भी मुक्त करना चाहोगे तो उसके लिए ब्राह्मण को दास–दासी, हाथी, घोड़े, बैल और स्वर्ण निष्क सौ–सौ की संख्या में देना।[34] दासों की मुक्ति के सम्बन्ध में कौटिल्य के अनुसार जो दास दण्ड–स्वरूप अथवा युद्धबन्दी होने के कारण दास बनाये जाते थे वे शुल्क देकर मुक्त हो सकते थे। कीतदास को उतना ही शुल्क देना पड़ता था जितने में उसके स्वामी ने उसे क्रय किया हो । यदि किसी को अर्थदंड चुकाने की असफलता के कारण दास बनना पड़ता, तो अर्थदण्ड की राशि का भुगतान कर देने पर उसे मुक्ति मिल जाती। यदि दास–स्वामी मुक्ति षुल्क पाकर भी किसी दास को मुक्त नहीं करता था तो उसे द्वादषपण दंड का भागी माना जाता था। यदि दासी को अपने स्वामी से सन्तान लाभ हो जाता तो माता और सन्तान दोनों स्वतन्त्र माने जाते।[35] मज्झिम–निकाय के रट्ठपाल सुत्त से ज्ञात होता है कि अपने स्वामी को कोई सुखद संवाद देने से भी कभी–कभी दास को पुरस्कार स्वरूप मुक्त कर दिया जाता था।[36]

**निष्कर्ष**

दासों को मुक्त करने की प्रथा का उल्लेख नारद–स्मृति[37] में भी मिलता है जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में दास–मोक्ष की परम्परा लम्बी अवधि तक प्रचलित रही।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची**

1- Chanan, D.R.-Slavery in Ancient India., p.15-18
2. *अर्थषास्त्र, 3/13, म्लेच्छानामदोषः प्रजां विक्रेतुमाधातुं वा न त्वेवार्यस्य दासभावः ।*
3. *मनु–स्मृति, 8/413*
4. *महाभारत, सभापर्व, 52/45–46*
5. *जातक, 4,पृ099,*
6. *जातक, 1 पृ0 200, पृ0 22, 99, 6 पृ0285, 545–48*
7. *अर्थशास्त्र, 3/13*
8. *मनु–स्मृति, 8/415*
9. *जातक, 1, पृ0 451*
10. *जातक, 1, पृ0 402, अथ' एकं दासीं भतिं अददमानं सामिका द्वारे निसिदापेत्वा रज्जुया पहारन्ति ।*
11. *मनु–स्मृति,, 8/299*
12. *अंगुत्तर–निकाय, 2, पृ0 207–8*
13. *जातक, 6 पृ0 548–73*
14. *जातक, 1, 451*
15. *जातक, 2 पृ0 428*
16. *जातक, 3, पृ0 167*
17. *अर्थशास्त्र, 3/13*
18. *वहीं*
19. *जातक,, 1, पृ0 156–57*
20. *कट्हारि–जातक (7), भद्दसाल–जातक (465)*
21. *खुद्दक निकाय, 1, पृ0 139, जातक, 1 पृ0 468*
22. *सामन्त–पासादिक, 1/215*
23. *चुल्लवग्ग, 4/4/7, 6/4/1*
24. *जातक,5 पृ0 284*
25. *जातक, 1, पृ0 453*
26. *जातक, 1, पृ0 484*
27. *जातक, 3, पृ0 163*
28. *जातक, 1, पृ0 402*
29. *जातक, 1, पृ0 383*
30. *जातक, 1 पृ0 453*
31. *अर्थशास्त्र, 3/13*
32. *दीघनिकाय, 1 पृ0 60–61*
33. *जातक, 6, पृ0 546–47*
34. *अर्थशास्त्र, 3/13*
35. *मज्जिम–निकाय, 2, पृ0 62*
36. *नारद–स्मृति, 5/29–34*